

अर्घ्यावलि

देव-शास्त्र-गुरु का अर्घ्य

(गीता)

- (१) जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ ।
वर धूप निरमल फल विविध बहु, जनम के पातक हरूँ ॥
इह भाँति अर्घ्य चढ़ाय नित भवि, करत शिव पंकति मचूँ ।
अरहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ ॥

(दोहा)

वसु विधि अर्घ्य संजोयकै, अति उछाह मन कीन ।

जासों पूजों परम पद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

- (२) क्षण भर निजरस को पी चेतन मिथ्यामल को धो देता है ।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है ॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल-रवि जग-मग करता है ।
दर्शन-बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अरहंत अवस्था है ॥
यह अर्घ्य समर्पण करके प्रभु, निज गुण का अर्घ्य बनाऊँगा ।
और निश्चित तेरे सदृश प्रभु, अरहन्त अवस्था पाऊँगा ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

- (३) बहुमूल्य जगत का वैभव यह, क्या हमको सुखी बना सकता ।
अरे पूर्णता पाने में, इसकी क्या है आवश्यकता ॥
मैं स्वयं पूर्ण हूँ अपने में, प्रभु है अनर्घ्य मेरी माया ।
बहुमूल्य द्रव्यमय अर्घ्य लिये, अर्पण के हेतु चला आया ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचपरमेष्ठी का अर्घ्य

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप, नैवेद्य धूप फल लाया हूँ ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ ॥
यह अर्घ्य समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घ्य पद दो स्वामी ।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुःख मेटो अन्तर्यामी ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (संस्कृत)

(वसन्ततिलका)

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं,
सूक्ष्मस्वभावपरमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघकक्षदहनं सुखसस्य बीजं,
वन्दे सदा निरुपमं वर सिद्धचक्रम् ॥

(अनुष्टुप)

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहम् ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सिद्धपरमेष्ठी का अर्घ्य (हिन्दी)

जल पिया और चन्दन चरचा, मालायें सुरभित सुमनों की ।
पहनीं, तन्दुल सेये व्यंजन, दीपावलियाँ की रत्नों की ॥
सुरभि धूपायन की फैली, शुभ कर्मों का सब फल पाया ।
आकुलता फिर भी बनी रही, क्या कारण जान नहीं पाया ॥
जब दृष्टि पड़ी प्रभुजी तुम पर, मुझ को स्वभाव का भान हुआ ।
सुख नहीं विषय-भोगों में है, तुमको लख यह सद्ज्ञान हुआ ॥
जल से फल तक का वैभव यह, मैं आज त्यागने हूँ आया ।
होकर निराश सब जग भर से, अब सिद्ध शरण में मैं आया ॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

चौबीस तीर्थकर का अर्घ्य

जीवन में अभिलाषायें तज, शुद्धभाव धारण करलें ।
अरे अर्घ्य यह अर्पण करके हम, अनर्घ्यपद प्राप्त करें ॥
ऋषभदेव से वीरप्रभु तक, श्री तीर्थकरदेव महान ।
अति विनम्र हो हम करते हैं, उनकी महिमा का गुणगान ॥

ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरपर्यंत चतुर्विंशतितीर्थकर जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घ्यपद-प्राप्तयेऽर्घ्यं नि. स्वाहा ।

जल फल आठों शुचिसार, ताको अर्घ्य करें।

तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों ॥

चौबीसों श्री जिनचन्द, आनन्द कन्द सही।

पद जजत हरत भव-फन्द, पावत मोक्ष मही ॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरांतेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय पूजन का अर्घ्य

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिये।

सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रकट किये ॥

यह अर्घ्य समर्पण करके मैं, श्री देव-शास्त्र-गुरु को ध्याऊँ।

विद्यमान श्री बीस तीर्थकर, सिद्ध प्रभु के गुण गाऊँ ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो विद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो अनन्तानन्त-
सिद्धपरमेष्ठिभ्यश्च अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

विदेहक्षेत्र में विद्यमान बीस तीर्थकरों का अर्घ्य

जल फल आठों दर्व, अरघ कर प्रीति धरी है।

गणधर इन्द्रनि हू तैं, थुति पूरी न करी है ॥

‘द्यानत’ सेवक जानके, (हो) जगतैं लेहु निकार।

सीमंधर जिन आदि दे, (स्वामी) बीस विदेह मँझार ॥

श्री जिनराज हो, भव तारणतरण जिहाज, श्री महाराज हो ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरादिविद्यमानविंशतितीर्थकरेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सीमंधर भगवान का अर्घ्य

निर्मल जल-सा प्रभु निज स्वरूप, पहचान उसी में लीन हुए।

भव-ताप उतरने लगा तभी, चन्दन-सी उठी हिलोर हिये ॥

अभिराम-भवन प्रभु अक्षत का, सब शक्ति-प्रसून लगे खिलने।

क्षुत्-तृषा अठारह दोष क्षीण, कैवल्य प्रदीप लगा जलने ॥

मिट चली चपलता योगों की, कर्मों के ईंधन ध्वस्त हुए।

फल हुआ प्रभो ! ऐसा मधुरिम, तुम धवल निरंजन स्वस्थ हुए ॥

ॐ ह्रीं श्री सीमंधरजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान का अर्घ्य

इस अर्घ्य का क्या मूल्य है अन्-अर्घ्य पद के सामने?
उस परम-पद को पा लिया, हे पतित-पावन आपने ॥
संतप्त-मानस शान्त हों, जिनके गुणों के गान में ।
वे वर्द्धमान महान जिन विचरें हमारे ध्यान में ॥

ॐ ह्रीं श्री वर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंच-बालयति का अर्घ्य

सजि वसुविधि द्रव्य मनोज्ञ, अर्घ्य बनावत हैं ।
वसुकर्म अनादि संयोग, ताहि नसावत हैं ॥
श्री वासु पूज्य-मल्लि-नेमि, पारस वीर अति ।
नमूँ मन-वच-तन धरि प्रेम, पाँचों बालयति ॥

ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य-मल्लिनाथ-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ-महावीर-पंचबालयति-
तीर्थकरेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

नन्दीश्वर द्वीप का अर्घ्य

यह अरघ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों ।
'द्यानत' कीनो शिवखेत, भूमि समरपतु हों ॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुंज करें ।
वसुदिन प्रतिमा अभिराम, आनन्द भाव धरों ॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे पूर्वपश्चिमोत्तरदक्षिणे द्विपंचाशज्जिनालयस्थजिनप्रतिमाभ्यो
अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

दशलक्षण धर्म का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरव सँवार, 'द्यानत' अधिक उछाह सों ।
भव-आताप निवार, दशलक्षण पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मांगाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

रत्नत्रय का अर्घ्य

(सोरठा)

आठों दरब निरधार, उत्तम सों उत्तम लिये ।

जनम रोग निरवार, सम्यक् रत्नत्रय भजूँ ॥

ॐ ह्रीं सम्यक् रत्नत्रयाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्दर्शन का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।

सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसम्यग्दर्शनाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यग्ज्ञान का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।

सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सम्यक्चारित्र का अर्घ्य

(सोरठा)

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु ।

सम्यक् चारितसार, तेरह विधि पूजों सदा ॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

पंचमेरु का अर्घ्य

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमाजी को करहुँ प्रणाम ।

महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय ॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरुसम्बन्धि-अशीतिजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

सोलहकारण का अर्घ्य

जल फल आठों दरब चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करों मनलाय ।

परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो ॥

दर्शविशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थकर पद पाय ।

परमगुरु हो, जय-जय नाथ परमगुरु हो ॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशकारणेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

महाऽर्घ्य
(अडिल्ल^१)

पंच परम परमेष्ठी पूजूँ भाव से।
उनकी वाणी पूजूँ अधिक उछाह से॥
रतनत्रयमय परम शुद्ध उपयोग है।
दश धर्मों से मंडित पावन योग है॥ १ ॥
गिरि कैलाश महान और पावापुरी।
सम्मोदाचल गिरनारी चम्पापुरी॥
आदि अनेकों सिद्धक्षेत्र मन भावने।
और अनेकों अतिशय क्षेत्र सुहावने॥ २ ॥
तीन लोक में थान-थान अति ही घने।
कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालय बने॥
इन सबकी पूजन करता हूँ चाव से।
और भावना भाता अति उत्साह से॥ ३ ॥
इन सबकी वंदना करूँ अति चाव से।
और भावना बारह भाऊँ भाव से॥
धर्मध्यान शुद्धोपयोग का योग है।
और परम तप स्वाध्याय संयोग है॥ ४ ॥
इन सबकी भक्ति पूजन आराधना।
और आतमा में तन्मय हो साधना॥
यह सब चाहूँ और न कोई चाह है।
इन सबमें ही मेरा अति उत्साह है॥ ५ ॥

(दोहा)

एकमात्र आराध्य है, अपना ज्ञायकभाव।
उसमें तन्मय होय तो, होय विभाव अभाव॥ ६ ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-साधुपंचपरमेष्ठिभ्यो नमः
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र्येभ्यो नमः उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय नमः श्री
सम्मोदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-पावापुर-आदि सिद्धक्षेत्रेभ्यो
नमः अतिशयक्षेत्रेभ्यो नमः त्रिलोकसम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो नमः
सर्वपूज्यपदेभ्यो नमः महाऽर्घ्य

१. अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आणा? की धुन पर गायेँ।

मैं देव श्री अरहंत पूजूँ, सिद्ध पूजूँ चाव सों ।
 आचार्य श्री उवझाय पूजूँ, साधु पूजूँ भाव सों ॥
 अरहन्त भाषित बैन पूजूँ, द्वादशांग रची गनी ।
 पूजूँ दिगम्बर गुरुचरण, शिवहेत सब आशा हनी ॥
 सर्वज्ञ भाषित धर्म दशविधि, दयामय पूजूँ सदा ।
 जजि भावना षोडश रत्नत्रय, जा बिना शिव नहीं कदा ॥
 त्रैलोक्य के कृत्रिम-अकृत्रिम, चैत्य-चैत्यालय जजूँ ।
 पंचमेरु-नन्दीश्वर जिनालय, खचर सुर पूजित भजूँ ॥
 कैलाश श्री सम्मेदगिरि, गिरनार मैं पूजूँ सदा ।
 चम्पापुरी पावापुरी पुनि, और तीरथ शर्मदा ॥
 चौबीस श्री जिनराज पूजूँ, बीस क्षेत्र विदेह के ।
 नामावली इक सहस्र वसु जय, होय पति शिव गेह के ॥

(दोहा)

जल गंधाक्षत पुष्प चरु, दीप धूप फल लाय ।

सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहु विधि भक्ति बढ़ाय ॥

ॐ ह्रीं श्री अरहन्तसिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो, द्वादशांगजिनवाणीभ्यो
 उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माय, दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्यो, सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र्येभ्यः
 त्रिलोकसम्बन्धीकृत्रिमाकृत्रिमजिनचैत्यालयेभ्यो, पंचमेरौ अशीतिचैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर-
 द्वीपस्थद्विपंचाशज्जिनालयेभ्यो, श्रीसम्मेदशिखर-गिरनारगिरि-कैलाशगिरि-चम्पापुर-
 पावापुर-आदिसिद्धक्षेत्रेभ्यो, अतिशयक्षेत्रेभ्यो, विदेहक्षेत्रस्थितसीमंधरादिविद्यमान-
 विंशतितीर्थकरेभ्यो, ऋषभादिचतुर्विंशतितीर्थकरेभ्यो, भगवज्जिनसहस्राष्टनामेभ्यश्च
 अनर्घ्यपदप्राप्तये महाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।